आदर्शवाद

वर्तमान में आदर्शवाद की उपयोगिता

विचारवाद या **आदर्शवाद** या **प्रत्ययवाद** (Idealism ; Ideal= विचार या प्रत्यय) उन विचारों और मान्यताओं की समेकित विचारधारा है जिनके अनुसार इस जगत की समस्त वस्तुएं विचार (Idea) या चेतना (Consciousness) की अभिव्यक्ति है। सृष्टि का सारतत्त्व जड़ पदार्थ (Matter) नहीं अपितु मूल चेतना है। आदर्शवाद जड़ता या भौतिकवाद का विपरीत रूप प्रस्तुत करता है।[1] यह आत्मिक-अभौतिक के प्राथमिक होने तथा भौतिक के द्वितीयक होने के सिद्धांत को अपना आधार बनाता है, जो उसे देश-काल में जगत की परिमितता और जगत की ईश्वर द्वारा रचना के विषय में धर्म के जड़सूत्रों के निकट पहुँचाता है। आदर्शवाद चेतना को प्रकृति से अलग करके देखता है, जिसके फलस्वरूप वह मानव चेतना और संज्ञान की प्रक्रिया को अनिवार्यतः रहस्यमय बनाता है और अक्सर संशयवाद तथा अज्ञेयवाद की तरफ बढ़ने लगता है।[2]

^ आदर्शवाद की मान्य धारणाएँ

मूल्यों का अस्तित्व, उनमें श्रेष्ठता का भेद ओर सर्वश्रेष्ठ मूल्य का अस्तित्व आदर्शवाद की मौलिक धारणा है। इससे संबद्ध कुछ अन्य धारणाएँ भी आदर्शवादियों के लिए मान्य हैं। इनमें से हम यहाँ तीन पर विचार करेंगे:

- (१) सामान्य का पद विशेष से ऊँचा है। प्रत्येक बुद्धिवंत बुद्धिवंत होने के नाते भद्र में भाग लेने का अधिकारी है।
- (२) आध्यात्मिक भद्र का मूल्य प्राकृतिक भद्र से अधिक है।
- (३) बुद्धिवंत प्राणी (मनुष्य) में भद्र को सिद्ध करने की क्षमता है। मनुष्य स्वाधीन कर्ता है।

स्वार्थ और सर्वार्थ

सामान्य और विशेष का भेद स्वार्थवाद और सर्वार्थवाद के विवाद में प्रकट होता है। भोगवाद (सुखवाद) ने स्वार्थ से आरंभ किया, परंतु शीघ्र ही इसके ध्येय में स्वार्थ ने स्थान प्राप्त कर लिया। मनुष्य का अंतिम उद्देश्य अधिक से अधिक संख्या का अधिक से अधिक उपभोग है। दूसरी ओर कांट ने भी कहा कि निरपेक्ष आदेश की दृष्टि में सारे मनुष्य एक समान साध्य हैं, कोई मनुष्य भी साधन मात्र नहीं। मृत्यु की तरह नैतिक जीवन सभी भेदों को मिटा देता है। कोई मनुष्य कर्तव्य से ऊपर नहीं, कोई अधिकारों से वंचित नहीं।

आध्यात्मिक और प्राकृतिक मूल्य

इस विषय में कांट का कथन प्रसिद्ध है: *जगत में ओर इसके परे भी हम शिवसंकल्प के अतिरिक्त किसी वस्तु का भी चिंतन नहीं कर सकते, जो बिना किसी शर्त के शुभ या भद्र हो।* जॉन स्टुअर्ट मिल जैसे सुखवादी ने भी कहा, तृप्त सूअर से अतृप्त सुकरात होना उत्तम है। मिल ने यह नहीं देखा कि इस स्वीकृति में वह अपने सिद्धांत से हटकर आदर्शवाद का समर्थन कर रहे हैं। सुकरात में ऐसा आध्यात्मिक अंश है जो सूअर में विद्यमान नहीं।

टामस हिल ग्रीन ने विस्तार से यह बताने का यत्न किया है कि आधुनिक नैतिक भावना प्राचीन यूनान की भावना से इन दो बातों में बहुत आगे बढ़ी है-मनुष्य और मनुष्य में भेद कम हो गया है और जीवन में आध्यात्मिक पक्ष अग्रसर हो रहा है।

नैतिक स्वाधीनता

कांट के विचार में मानव प्रकृति में प्रमुख अंश 'नैतिक भावना' का है, वह अनुभव करता है कि कर्त्तव्यपालन की मांग शेष सभी मांगों से अधिक अधिकार रखती है, नैतिक आदेश 'निरपेक्ष आदेश' है। इस स्वीकृति के साथ नैतिक स्वाधीनता की स्वीकृति भी अनिवार्य हो जाती है। 'तुम्हें करना चाहिए, इसलिए तुम कर सकते हो।' योग्यता के अभाव में उत्तरदायित्व का प्रश्न उठ ही नहीं सकता।

शिक्षा में आदर्शवाद

शिक्षा आदिकाल से ही विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं से प्रभावित होती चली आ रही है, किन्तु इस पर सबसे अधिक प्रभाव आदर्शवाद का पड़ा है। शिक्षा के क्षेत्र में आदर्शवाद को प्रमुखता देने वालों में सर्वप्रथम प्लेटो, कॉमेनियस, पेस्टालॉजी तथा फ्रोबेल के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

आदर्शवादियों के अनुसार शिक्षा एक 'चेतना' अथवा 'बौद्धिक प्रक्रिया' है जो कि बालक में सद्गुणों का विकास कर उसे एक प्राकृतिक प्राणी से आध्यात्मिक प्राणी बनाती हैं। सांस्कृतिक परम्परायें एवं ज्ञान इस क्रिया को सम्पन्न करने का साधन हैं। इस क्रिया का 'साध्य का लक्ष्य' छात्र को आत्मानुभूति करने का अवसर प्रदान करना तथा उनका चरित्र निर्माण करना होता है। इस प्रकार आदर्शवादी विचारधारा के अनुसार शिक्षा वह चेतनापूर्ण एवं बौद्धिक प्रक्रिया है जिसमें गुरु के द्वारा शिष्य को आत्मानुभूति करायी जाती है। शिक्षा की इस अवधारणा से पता चलता है कि शिक्षा कोई एकांगी प्रक्रिया नहीं है अपितु दो धुरवों के मध्य चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें एक धुरव शिक्षार्थी है जिसकी मूल प्रकृति का परिष्कार किया जाता है तथा दूसरा धुरव शिक्षक होता है जो बालक की मूल प्रकृति का 'शोधन' एवं मार्गान्तरीकरण कर

शिक्षा के उद्देश्य तथा आदर्शवाद

आदर्शवादियों के अनुसार मनुष्य-जीवन का अन्तिम उद्देश्य आत्मा-परमात्मा के चरम स्वरूप को जानना है, इसी को आत्मानुभूति, आदर्श व्यक्तित्व की प्राप्ति, ईश्वर की प्राप्ति तथा परम आनन्द की प्राप्ति कहा जाता है। आत्मा-परमात्मा के चरम स्वरूप को जानने के लिए आदर्शवादियों के अनुसार मनुष्य को चार सोपान पार करने होते हैं। प्रथम सोपान पर उसे अपने 'प्राकृतिक स्व' का विकास करना होता है। दूसरे सोपान पर उसे अपने 'सामाजिक स्व' का विकास करना होता है। तीसरे सोपान पर उसे अपने 'मानसिक स्व' का विकास करना होता है तथा अन्तिम सोपान पर उसे 'आध्यात्मिक स्व' का विकास करना होता है।

आदर्शवादी विचारधारा के अनुसार मानव प्राणी ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट रचना है जिसको उसने असीमित शक्तियाँ प्रदान की हैं। इन्हीं विभिन्न शक्तियों एवं क्षमताओं के योग से व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इसीलिए आदर्शवादी विचारक व्यक्तित्व को ऊंचा उठाना अथवा उसमें निहित विभिन्न सर्वोच्च शक्तियों एवं क्षमताओं का प्रकटीकरण एवं अच्छे मार्ग की ओर ले जाना ही शिक्षा का उद्देश्य मानते हैं। स्पष्ट है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व महत्वपूर्ण होता है और व्यक्ति के भौतिक शरीर की अपेक्षा 'आत्मा' का विशेष महत्व होता है।

आत्मानुभूति के लिए आत्म-प्रकाशन भी आवश्यक है। आत्म प्रकाशन के लिए 'सामाजिक स्व' को विकसित करना आवश्यक है। सामाजिक स्व के विकास का अर्थ है-मनुष्य समाज द्वारा स्वीकृत नियमों का पालन करता है, उसकी पसन्द सामाजिक स्वीकृति-अस्वीकृति पर निर्भर करती है। आदर्शवादी यह मानते हैं कि मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता उसकी संस्कृति है, रहन-सहन, रीति रिवाज, भाषा साहित्य, कला संगीत एवं मूल्य हैं। ये ही उसे प्राकृतिक 'स्व' से सामाजिक स्व की ओर अग्रसर करते हैं, समाज एवं वातावरण के साथ भलीभाँति समायोजन स्थापित करने के लिए व्यक्ति को 'आत्म प्रकाशन' का अवसर मिलना आवश्यक है।

आत्म प्रकाशन के लिए 'बौद्धिक स्व' का विकास आवश्यक है। यह वह स्थिति होती है जब मनुष्य का व्यवहार सामाजिक स्वीकृति-अस्वीकृति से नियंत्रित न होकर उसकी बुद्धि एवं विवेक से नियंत्रित होता है। प्लेटो का विचार है कि मनुष्य की बुद्धि एवं विवेक उसके समस्त आदर्शों, कृत्यों एवं आध्यात्मिक चेष्टाओं का आधार होते हैं। बिना बुद्धि के ज्ञान नहीं हो सकता, बिना ज्ञान के विवेक नहीं हो सकता और बिना विवेक के सत्य-असत्य, शिव-अशिव एवं सुन्दर-असुन्दर में भेद नहीं किया जा सकता है तथा सत्यं शिवं सुन्दरम् की प्राप्ति नहीं की जा सकती है।

आदर्शवादियों का विश्वास है कि जब मनुष्य अपने 'प्राकृतिक स्व' एवं 'सामाजिक स्व' से ऊपर उठकर अपने 'बौद्धिक स्व' में नियंत्रित होने लगता है तो वह धीरे-धीरे स्वतः 'आध्यात्मिक स्व' के क्षेत्र में प्रवेश करने लगता है। प्लेटो का विचार है कि मनुष्य की प्रवृत्ति सत्यं, शिवं तथा सुन्दरम् की तरफ झुकी होती है। वह सदैव सत्य की खोज में तत्पर रहता है और जो कल्याणकारी एवं सुन्दर है, उसे स्वीकार करता है तथा जो कल्याणकारी एवं सुन्दर नहीं है, उसका त्याग करता है। आदर्शवादी मनुष्य को इस प्रक्रिया में प्रशिक्षित करने पर बल देते हैं।

उपर्युक्त लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए शनैः शनैः दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना आवश्यक है। इस भौतिक जगत के नानात्व से मुक्ति ही शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए। कहा भी गया है-

सा विद्या या विमुक्तये

अर्थात् विद्या (ज्ञान) वह है जो मुक्ति प्रदान करे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ऐसे व्यक्तित्व का चरम विकास ही आदर्शवादी शिक्षा का उद्देश्य है जिसमें व्यक्ति आत्मानुभूति कर सत्यं, शिवं तथा सुन्दरं की प्राप्ति कर सके। आत्मानुभूति

पाठ्यक्रम तथा आदर्शवाद

आदर्शवादीं विचारों ने शिक्षा के उद्देश्यों का ही निर्धारण नहीं किया है अपितु उसके लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम के स्वरूप को भी निर्धारित किया है। क्योंकि शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति तभी संभव है जबकि पाठ्यक्रम भी उसी के अनुसार हो। आदर्शवाद व्यक्ति के व्यक्तित्व का उत्कर्ष अथवा आत्मानुभूति के शाश्वत आदर्शों की प्राप्ति तथा सांस्कृतिक भौतिक जगत को अन्तिम सत्य नहीं मानता किन्तु सत्य का आभास तो मानता ही है इसी भौतिक जगत में रहकर एवं भौतिक वातावरण के सहयोग से ही आदर्शवाद चरम सत्य को प्राप्त करने का परामर्श देता है। मनुष्य का आध्यात्मिक वातावरण अधिक महत्वपूर्ण होता है किन्तु प्राकृतिक वातावरण की उपेक्षा नहीं की जा सकती। व्यक्ति शरीर और मन का संयोग होता है और इसमें मन अधिक महत्वपूर्ण होता है। किन्तु आदर्शवादी मानते हैं कि यदि शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति न की गयी तो मानसिक क्रिया भी दुःसाध्य हो जायेगी। व्यक्ति आत्मानुभूति की ओर तभी बढ़ सकता है जब उसका शारीरिक विकास हो चुका होता है। अतः भौतिक जगत का ज्ञान आवश्यक है।

यूनानी दार्शनिक प्लेटो के अनुसार शिक्षा का चरम लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति है। अतः पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों को सम्मिलित करने पर बल देना चाहिए जिसके माध्यम से उक्त लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम सत्यं, शिवं तथा सुन्दरं इन तीनों तत्वों को प्राप्त करना आवश्यक है। ये तीनों आध्यात्मिक मूल्य मनुष्य की क्रमशः बौद्धिक, नैतिक एवं कलात्मक क्रियाओं के द्वारा प्राप्त होते हैं। अतः प्लेटो पाठ्यचर्या में उन्हीं विषयों एवं क्रियाओं के समावेश पर बल देते हैं जो मानव को उपर्युक्त क्रियाओं में दक्षता प्रदान करे। उन्होंने बौद्धिक क्रियाओं के लिए भाषा, साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित तथा शारीरिक विज्ञान को महत्वपूर्ण बताया है। नैतिक क्रियाओं के लिए धर्म, नीतिशास्त्र, तथा अध्यात्मशास्त्र का और कलात्मक क्रियाओं के लिए विभिन्न कलाओं तथा संगीत का समावेश किया था।

आदर्शवादी विचारक हार्न महोदय पाठ्यक्रम के निर्धारण में ठोस आधारों को आदर्श समाज के अन्तर्गत व्यक्ति के चरित्र में खोजते हैं। अतः उनके अनुसार वे सभी अनुभव, क्रियायें तथा जीवन की परिस्थितियाँ आदि जो आदर्श की पूर्णता की ओर हमें ले जाती हैं। उन्हीं को पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान

यद्यपि टी०पी० नन महोदय ने शिक्षा के व्यक्तिवादी उद्देश्य का प्रबल समर्थन किया है किन्तु पाठ्यक्रम-निर्माण के सम्बन्ध में वे आदर्शवादी विचारधारा के समर्थक हैं। उनका विचार है कि विद्यालय का कर्तव्य एक निश्चित प्रकार की औपचारिक शिक्षा देना मात्र नहीं है अपितु उसका कर्तव्य है कि वह अपने समाज एवं राष्ट्र की आध्यात्मिक शक्ति की उन्नति में सहयोग प्रदान करें। उसके ऐतिहासिक क्रम एवं संस्कृतियों को सुरक्षित रखे और उसके भविष्य को निरन्तर उज्जवल बनाने का सफल प्रयत्न करें। अतः विद्यालय में बालक को दो प्रमुख क्रियाओं के लिए प्रशिक्षित किया जान चाहिए-एक वे क्रियायें जो बालक के वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन की उन्नति करें तथा दूसरी वे क्रियायें जो मानवीय सभ्यता के प्रारम्भिक स्वरूप का निर्धारण करें।

सारांशतः यह कहा जाता है कि आदर्शवादी विचारधारा के अनुसार शिक्षा के पाठ्यक्रम में स्थिरता न होकर गतिशीलता होनी चाहिए, जिससे बालकों की आवश्यकतानुसार उनमें परिवर्तन किया जा सके। इस दृष्टि से आदर्शवादी अपने पाठ्यक्रम में जहाँ एक तरफ शारीरिक शिक्षा को महत्व देते हैं, वहीं दूसरी तरफ प्राकृतिक वातावरण की जानकारी के लिए भौतिकी, रसायनिकी, भूमिति भूगोल, खगोल, भूगर्भ विज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, जीव विज्ञान इत्यादि विषयों को भी महत्व देते हैं। बालक के आत्मिक विकास के लिए कला,

प्रायः लोगों का ऐसा विचार है कि आदर्शवाद शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्यों का निर्धारण करता है, शिक्षण पद्धति का नहीं। परन्तु वास्तविकता यह है कि आदर्शवाद शिक्षा के उद्देश्यों एवं आदर्शों पर अधिक बल देते हुए भी शिक्षा पद्धति की अवहेलना नहीं करता है। आदर्शवादी विचारधारा के अनुसार शिक्षण पद्धति ऐसी होनी चाहिये जिससे बालक के व्यक्तित्व का विकास हो सके। किसी भी शिक्षण पद्धति को उत्तम तभी कहा जा सकता है जबकि वह बालकों को अपनी बुद्धि, योग्यता, रूचि, शक्ति, सामर्थ्य एवं आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए इन्हें ज्ञान प्रदान करने में सहायक सिद्ध हो सके। आदर्शवाद के अनुसार यदि व्यक्ति एक बार स्पष्ट रूप से शिक्षा का उद्देश्य निश्चित कर लेता है तो फिर यह गौण हो जाता है कि वह किन पद्धतियों के सहारे उन उद्देश्यों को प्राप्त करेगा। अतः जब जो प्रविधि शिक्षक अथवा शिक्षार्थी के लिए उपयुक्त हो, तब उसे अंगीकार कर लेने में कोई हानि नहीं। इसीलिए वह खेल पद्धति को अपनाने में भी संकोच नहीं करता है। फ्रोबेल ने शिक्षण पद्धति को मूलतः 'आत्म-प्रेरित क्रिया' माना है। खेल द्वारा शिक्षा भी आत्म क्रिया द्वारा शिक्षा का ही एक भेद है। खेल के विषय में फ्रोबेल ने लिखा है- 'खेल बालक के लिए उसके अन्तर्जगत एवं वाह्य-जगत का दर्पण है। यह जीवन एवं लगन शक्ति को अभिव्यक्ति करने वाली प्रवृत्ति है।'

आदर्शवादी प्राचीन साहित्य का आदर करते हैं। वे मानते हैं कि हमारे प्राचीन साहित्य में पूर्वजों द्वारा खोजा हुआ ज्ञान भरा पड़ा है, हमें उससे लाभ उठाना चाहिये। प्राचीन साहित्य के अध्ययन के लिए वे 'स्वाध्याय विधि' के पक्षधर हैं। परन्तु इस विधि का प्रयोग शिक्षा के उच्च स्तर पर ही हो सकता है।

पाश्चात्य आदर्शवादी विचारकों ने अनेक शिक्षण-विधियों का विकास किया है। आजकल 'प्रश्नोत्तर-विधि' की विशेष चर्चा रहती है। सुकरात जैसे आदर्शवादी ने इस विधि का प्रयोग ईसा से ४५० वर्ष पूर्व किया था। सुकरात की शिक्षण – विधि उपयुक्त प्रश्नों द्वारा वार्तालाप पर आधारित थी। सुकरात के शिष्य प्लेटो ने भी सुकराती विधि का ही अनुसरण किया। प्लेटो ने प्रश्नोत्तर विधि के आधार पर संवाद विधि का विकास किया। प्लेटो ने अपनी अधिकांश रचनायें भी संवाद के रूप में लिखी हैं। प्लेटो के शिष्य अरस्तू 'आगमन' एवं निगमन विधियों पर बल देते थे। निगमन विधि में 'सामान्य से विशेष की ओर' तथा आगमन विधि में 'विशेष से सामान्य की ओर जाते हैं।

आधुनिक आदर्शवादी दार्शनिकों में हेगल ने 'तर्क-विधि', पेस्टालॉजी ने 'अभ्यास विधि' तथा रेने डेकार्ट ने 'सरल से जटिल' की ओर चलने में अपनी रूचि प्रदर्शित की। आदर्शवादी 'व्याख्यान विधि' अथवा अध्ययन विधि को उपेक्षाणीय नहीं समझता। साक्षात् अनुभव श्रेष्ठ है, किन्तु विश्व की सभी वस्तुओं का ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा प्राप्त करना मानव के लिए असंभव है। अतः दूसरे के अनुभव से लाभ उठाने में आदर्शवादी कोई हानि नहीं देखता। इसलिए वाही-कहीं पर व्याख्यान विधि को अपनाने में भी आदर्शवादी नहीं हिचकता है। वह सामूहिक चर्चा का भी आश्रय लेता है और महत्वपूर्ण विषयों को स्पष्ट करने के लिए वाद-विवाद विधि का आश्रय लेने की सलाह देता है। जहाँ शिशुओं को 'कथा विधि' द्वारा शिक्षा देने का आदर्शवादी प्रस्ताव करता है वहीं किशोरों को 'नाटक-विधि' एवं 'वार्तालाप- विधि' से शिक्षा देने की वकालत करता है। हरबार्ट ने नवीन ज्ञान को विद्यार्थियों तक पहुँचाने के लिए 'पंचपदी' का आश्रय लिया है। प्रसिद्ध आदर्शवादी पेस्टालाजी के अनुसार शिक्षण ४४विधि मस्तिष्क के विकास के अनुह्वप होनी चाहिए और उन्होंने अपनी विधि को 'आनशांग' के नाम से पुकारा है। पेस्टालाजी ने अपनी विधि का सार संख्या, रूप एवं भाषा बताया है।

शिक्षक तथा आदर्शवाद

प्रकृतिवादी शिक्षक को शिक्षण-प्रक्रिया में नगण्य समझते हैं और उन्हें पर्दे के पीछे ही रहने का परामर्श देते हैं। आदर्शवादी विचारक ठीक इसके विपरीत कहते हैं। आदर्शवाद के अनुसार शिक्षक का स्थान शिक्षण प्रक्रिया में सर्वोपरि है। शिक्षण-प्रक्रिया यान्त्रिक नहीं होती। इसमें एक व्यक्तित्व का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। बालक जो अन्ततः व्यक्ति है – न कि शरीर, उसका विकास प्रभावशाली व्यक्तित्व द्वारा ही सम्भव है। इसलिए शिक्षक का व्यक्तित्व प्रभावशाली होना चाहिये। जन्म के समय बालक में अनेक शक्तियाँ सुषुप्त होती हैं। शिक्षक का कार्य इन सुषुप्त शक्तियों को जाग्रत करना है।

भारतीय आदर्शवाद में शिक्षक को सर्वोत्तम स्थान देते हुए उन्हें 'त्रिदेव' की संज्ञा देते हुए कहा गया है कि – 'गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वरः' अर्थात् गुरु (शिक्षक) ही ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर है। इसी प्रकार अथर्ववेद के 'ब्रह्मचर्य सूक्त' में आचार्य (शिक्षक) के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'आचार्यों मृत्युर्वरुणः, सोम ओषधयः-प्रायः।' अर्थात् गुरू पुराने संस्कारों को नष्ट करके नवीन संस्कार डालता है और बालक को नवीन जीवन प्रदान करता है, इसलिए वह मृत्युर्वरुण (नया जन्म देने वाला) कहा गया है। गुरु मन के कुसंस्कारों

(नया जन्म देने वाला) कहा गया है। गुरु मन के कुसंस्कारों को धो देता है इसलिए उसे वरुण कहा गया है। वह शान्ति के मार्ग पर ले जाता है। इसलिए सोम (चन्द्रमा) के समान तथा कठिनाई रूपी रोगों से दूर करने के कारण उसे औषधि की संज्ञा दी गयी। इसलिए आदर्शवादी विचारक बालक के आन्तरिक अथवा आध्यात्मिक विकास के लिए शिक्षक की आवश्यकता पर बल देते हैं।

शिक्षा-व्यवस्था में शिक्षक छात्र के जीवन का मार्ग-दर्शक होता है। वह उन्हें उचित मार्ग-दर्शन करके उसकी स्वाभाविक शक्तियों को उचित दिशा में विकसित करने का अवसर प्रदान करता है। शिक्षक शिक्षण-प्रक्रिया की धुरी है। उसके बिना शिक्षण-प्रक्रिया अधूरी रहेगी। आदर्श एवं लक्ष्य तथा जीवन के मूल्य पहले से ही विद्यमान हैं। प्लेटो के अनुसार इनका पहले से ही अस्तित्व है। शिक्षक का यह दायित्व है कि वह बालकों के सर्वोन्मुखी व्यक्तित्व के विकास का प्रयास करे ताकि वे अपने लक्ष्यों को सरलता से प्राप्त कर सकें। इस प्रकार आदर्शवादी विचारक बालक को प्राकृतिक प्राणी से सामाजिक एवं आध्यात्मिक प्राणी में परिवर्तित करने के लिए शिक्षक की आवश्यकता पर अधिक बल देते हैं। सुप्रसिद्ध आदर्शवादी फ्रोबेल ने विद्यालय रूपी उपवन में बालक रूपी सुकोमल पौधा के सर्वोत्तम विकास के लिए शिक्षक ह्वपी माली की अति आवश्यकता बताया है। रॉस ने आदर्शवाद के अनुसार 'शिक्षार्थी' के समुचित विकास के लिए 'शिक्षक' के

(नया जन्म देने वाला) कहा गया है। गुरु मन के कुसंस्कारों को धो देता है इसलिए उसे वरुण कहा गया है। वह शान्ति के मार्ग पर ले जाता है। इसलिए सोम (चन्द्रमा) के समान तथा कठिनाई रूपी रोगों से दूर करने के कारण उसे औषधि की संज्ञा दी गयी। इसलिए आदर्शवादी विचारक बालक के आन्तरिक अथवा आध्यात्मिक विकास के लिए शिक्षक की आवश्यकता पर बल देते हैं।

शिक्षा-व्यवस्था में शिक्षक छात्र के जीवन का मार्ग-दर्शक होता है। वह उन्हें उचित मार्ग-दर्शन करके उसकी स्वाभाविक शक्तियों को उचित दिशा में विकसित करने का अवसर प्रदान करता है। शिक्षक शिक्षण-प्रक्रिया की धुरी है। उसके बिना शिक्षण-प्रक्रिया अधूरी रहेगी। आदर्श एवं लक्ष्य तथा जीवन के मूल्य पहले से ही विद्यमान हैं। प्लेटो के अनुसार इनका पहले से ही अस्तित्व है। शिक्षक का यह दायित्व है कि वह बालकों के सर्वोन्मुखी व्यक्तित्व के विकास का प्रयास करे ताकि वे अपने लक्ष्यों को सरलता से प्राप्त कर सकें। इस प्रकार आदर्शवादी विचारक बालक को प्राकृतिक प्राणी से सामाजिक एवं आध्यात्मिक प्राणी में परिवर्तित करने के लिए शिक्षक की आवश्यकता पर अधिक बल देते हैं। सुप्रसिद्ध आदर्शवादी फ्रोबेल ने विद्यालय रूपी उपवन में बालक रूपी सुकोमल पौधा के सर्वोत्तम विकास के लिए शिक्षक ह्वपी माली की अति आवश्यकता बताया है। रॉस ने आदर्शवाद के अनुसार 'शिक्षार्थी' के समुचित विकास के लिए 'शिक्षक' के

के मूल्य पहले से ही विद्यमान हैं। प्लेटो के अनुसार इनका पहले से ही अस्तित्व है। शिक्षक का यह दायित्व है कि वह बालकों के सर्वोन्मुखी व्यक्तित्व के विकास का प्रयास करे ताकि वे अपने लक्ष्यों को सरलता से प्राप्त कर सकें। इस प्रकार आदर्शवादी विचारक बालक को प्राकृतिक प्राणी से सामाजिक एवं आध्यात्मिक प्राणी में परिवर्तित करने के लिए शिक्षक की आवश्यकता पर अधिक बल देते हैं। सुप्रसिद्ध आदर्शवादी फ्रोबेल ने विद्यालय रूपी उपवन में बालक रूपी सुकोमल पौधा के सर्वोत्तम विकास के लिए शिक्षक ह्वपी माली की अति आवश्यकता बताया है। रॉस ने आदर्शवाद के अनुसार 'शिक्षार्थी' के समुचित विकास के लिए 'शिक्षक' के स्थान का निरुपण करते हुए लिखा है-

> *प्रकृतिवादी किसी भी गुलाब से सन्तुष्ट हो जाते हैं। परन्तु आदर्शवादी सुन्दर गुलाब चाहता है। इस प्रकार शिक्षक अपने प्रयत्नों से शिक्षार्थी को जो अपनी प्रकृति के नियमों के अनुसार परिवर्तन हो रहा है, उस स्तर पर पहुँचने में सहयोग देता है जिस पर वह स्वयं नहीं पहुंच पाता।*

शिक्षक के अत्यधिक महत्व के कारण ही अधिकांश विद्वान आदर्शवादी शिक्षा को 'शिक्षक केन्द्रित शिक्षा' की संज्ञा देते हैं।

अनुशासन तथा आदर्शवाद

आदर्शवाद में अनुशासन को उपयुक्त शिक्षा के लिए आवश्यक समझा जाता है। आदर्शवादी विचारक शिक्षा में अनुशासन के कठोर पक्षपाती हैं। इस विचारधारा के अनुसार बालक को पूर्ण स्वतंत्रता नहीं देनी चाहिए। इस सम्बन्ध में आदर्शवाद एवं प्रकृतिवाद में भिन्न मत हैं। प्रकृतिवादी शिक्षा- स्वतंत्रता में अधिक विश्वास रखते हैं। जबकि आदर्शवादी शिक्षा- अनुशासन में। इस संबंध में थामस एवं लैंग ने लिखा है-"प्रकृतिवादियों का नारा" स्वतंत्रता है। जबकि आदर्शवातियों का नारा अनुशासन है।" आदर्शवादी विचारक मानते हैं कि बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता देने से तो हानि की ही संभावना अधिक है, लाभ की कम। अतः बालक को सीमित स्वतंत्रता ही प्रदान की जाय।

आदर्शवाद अनुशासन पर बल अवश्य देता है किन्तु वह दमनात्मक अनुशासन के पक्ष में नहीं है क्योंकि कठोर नियन्त्रण में रखकर और दमनकारी साधनों द्वारा स्थापित अनुशासन का परिणाम प्रायः भयंकर होता है। इसलिए अनुशासन का स्वरूप प्रभावात्मक होता है। इसके लिए आदर्शवाद नैतिक गुणों के विकास को महत्व देता है। नैतिक गुणों के विकास के लिए नम्रता, ईमानदारी, समय की पाबन्दी, आज्ञाकारिता, सत्यवादिता इत्यादि गुणों का विकास आवश्यक है जो अनुशासनपूर्ण वातावरण में ही संभव है।

अनुशासन के सम्बन्ध में आदर्शवाद की एक अन्य मान्यता यह है कि यह पुरस्कार अथवा दण्ड से स्थापित नहीं किया जा सकता। बालक कोई अच्छा कार्य पुरस्कार के लोभ में आकर नहीं करता। सद्गुणों के लिए पुरस्कार की व्यवस्था भी विद्यालय में नहीं होनी चाहिये। सत्य बोलने के लिए किसी प्रस्कार की जरुरत नहीं है। यह तो मानव कर्तव्य ही है। इसे तो करना ही चाहिये। बालक कोई कार्य इसलिए करता है कि उसकी उस कार्य में वास्तविक रूचि होती है तथा उससे उसे वास्तविक आनन्द की प्राप्ति भी होती है। इस प्रकार बालक में 'आत्मानुशासन' की नींव पड़ती है और कालान्तर में वह अनुशासित रहता है। आदर्शवादी पेस्टालॉजी के अनुसार बालक के प्रति सहानुभूति बरती जाये। फ्रोबेल के अनुसार बालक के ऊपर नियन्त्रण उसकी रूचि के ज्ञान के आधार पर तथा सहानुभूति एवं प्रेम के प्रकाशन द्वारा करना चाहिये, क्योंकि अनुशासन की प्रेरणा तो भीतर से मिलती है। इस मत की पुष्टि में हार्न महोदय का यह कथन उचित प्रतीत होता है कि 'अनुशासन का प्रारम्भ वाह्य रूप से होता है किन्तु अन्त आत्म-नियंत्रण द्वारा आन्तरिक रूप में हो।'

आदर्शवाद का मूल्यांकन

किसी वस्तु, क्रिया अथवा विचार का मूल्यांकन किन्ही पूर्व निश्चित मानदण्डों के आधार पर किया जाता है। ये मानदण्ड व्यक्तिगत भी हो सकते हैं और सामाजिक भी, मनोवैज्ञानिक भी हो सकते हैं और वैज्ञानिक भी, अल्पमान्य भी हो सकते हैं और बहुमान्य भी। जो मानदण्ड जितना अधिक वस्तुनिष्ठ होता है और जितने अधिक व्यक्तियों को मान्य होता है। वह उतना ही अधिक अच्छा मानदण्ड माना जाता है। यहाँ ऐसा ही प्रयास किया गया है और आदर्शवादी शिक्षा का मूल्यांकन भारतीय समाज की वर्तमान परिस्थितियों और भविष्य की संभावनाओं एवं आकांक्षाओं के आधार पर किया गया है। यदि उपर्युक्त वर्णित शिक्षा के विभिन्न अंगों के सम्बन्ध में आदर्शवादियों द्वारा प्रस्तुत विचारों के सन्दर्भ में आदर्शवाद का मूल्यांकन करें तो हमें उसके बहुत से गुण एवं दोषों का पता चलता है।

शिक्षा के सन्दर्भ में आदर्शवाद के प्रभाव, गुण अथवा योगदान निम्नलिखित हैं-

(१) आदर्शवादियों ने शिक्षा के जिन उद्देश्यों को प्रस्तावित किया है, उनसे बालकों के उत्तम चरित्र का निर्माण होता है। उन्होने शिक्षा का एक उल्लेखनीय उद्देश्य बालकों में सत्यं, शिवं एवं सुन्दरं ऐसे गुणों का विकास माना है जो अच्छे चरित्र

उन्होने शिक्षा का एक उल्लेखनीय उद्देश्य बालकों में सत्यं, शिवं एवं सुन्दरं ऐसे गुणों का विकास माना है जो अच्छे चरित्र के आधार स्तम्भ हैं।

(२) शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करने में आदर्शवाद ने अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की है। आदर्शवादी विचारकों के अनुसार बालक एक शास्त्रीय प्राणी के रूप में कुछ मूल प्रवृत्तियों को लेकर जन्म लेता है और उसे समाज का सुसंस्कृत सदस्य बनाने के लिए शिक्षा ही एक मुख्य साधन है। अतः वे शिक्षा के उद्देश्यों पर विस्तृत रूप से विचार करते हैं।

(३) आदर्शवाद शिक्षा में शिक्षक को सर्वोपरि स्थान प्रदान करता है। इससे शिक्षा-जगत में शिक्षक को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त होता है साथ ही बालक और समाज दोनों के हित के लिए अत्यावश्यक है।

(४) आदर्शवाद ने 'आत्मानुशासन' एवं 'आत्मनियंत्रण' के ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जिनका अनुगमन कर आज छात्रों में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता एवं तनाव की समस्या का समाधान किया जा सकता है।

(५) आदर्शवादी शिक्षा में व्यक्ति और समाज दोनों के हित को ध्यान में रखते हुए व्यक्तिगत एवं सामाजिक मूल्यों को समान महत्व दिया गया है।

(६) आदर्शवाद ने अपनी शिक्षा-योजना में बालक के व्यक्तित्व का आदर कर शिक्षा प्रक्रिया के दोनों धुरवों अर्थात् शिक्षक एवं शिक्षार्थी को महत्व दिया है। आदर्शवाद से ही प्रभावित होकर आज सभी लोग बालकों के 'आदर्श व्यक्तित्व' पर बल देते हैं।

(७) आदर्शवादी शिक्षा आध्यात्मिक, धार्मिक तथा नैतिक गुणों के विकास पर अधिक बल देती है।

दोष

आदर्शवादी शिक्षा में उपर्युक्त गुणों के होते हुए कतिपय दोष भी पाये जाते हैं-

(१) आदर्शवाद ने शिक्षा के जो उद्देश्य निर्धारित किये हैं वे इतने अधिक 'अमूर्त' तथा सूक्ष्म हैं कि एक सामान्य बुद्धि के व्यक्ति को उनको समझना अति कठिन है। ये अमूर्त एवं सूक्ष्म उद्देश्य वर्तमान से संबंधित न होकर भविष्य से सम्बन्धित होते हैं।

(२) यह दर्शन बालक एवं उसकी प्रकृति की अपेक्षा शिक्षक एवं आदर्श को प्रधानता देता है और इस प्रकार 'बाल केन्द्रित शिक्षा' 'बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम' तथा 'बाल केन्द्रित शिक्षण पद्धति' से सम्बन्धित आधुनिक विचारों की उपेक्षा हो जाती है। जो आज के युग के लिए बिल्कुल न्याय संगत नहीं है।

(३) आदर्शवाद ने शिक्षा के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का निर्धारण तो किया किन्तु किसी निश्चित शिक्षण विधि का प्रतिपादन नहीं किया। इसमें जो विधियाँ बतलाई भी गयी हैं वे रटने पर अधिक बल देती हैं। ये विधियाँ अवैज्ञानिक हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हुआ कि किस प्रकार यह दार्शनिक विचारधारा 'मन' 'विचार' अथवा 'आदर्श' को सत्य एवं वास्तविक मानती है और इस भौतिक संसार को एक भ्रम अथवा प्रतिरूप मानती हैं। शिक्षा के सन्दर्भ में आदर्शवाद के विषय में कहा जा सकता है कि अनेक गुणों से परिपूर्ण होते हुए भी आज के भौतिकवादी दृष्टिकोण से पूर्ण दोष रहित नहीं माना जाता है, फिर भी आज के भौतिकवादी युग में व्याप्त संघर्ष, कलह एवं वैमनस्य की समाप्ति के लिए पुनः आदर्शवादी विचारधारा को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपनाना होगा।